भारत में प्रसारण और संगीत

अशोक दामोदर रानडे

(मूल प्रसिद्धी - सांध्यमित्र)

भारत में प्रसारण और संगीत दोनों एक दूसरे से इतने जुड़े हैं कि उनके उत्थान और पतन में ~~भी~~ गहरी समानता दिखाई देती है। इसलिये प्रसारण के स्वर्णयुग को संगीत का स्वर्णयुग भी कहा जा सकता है। कारण स्पष्ट है। सर्वमान्य मतों के अनुसार संगीत भारतीय प्रसारण का लोकप्रिय माध्यम है। प्रसारण में खण्डात्मक रिक्त स्थानों से छोटे मोटे फिलर्स तक तथा अन्तरालों से राष्ट्रीय कार्यक्रमों तक सब जगह संगीत ही संगीत है। क्योंकि सभी कलाओं में संगीत सबसे श्रुतिगत है इसलिये स्वभावतः ही इस कला की ओर प्रसारण का अत्यधिक झुकाव रहता है। इस माध्यम का यह विशिष्ट स्वभाव ही इसे इस ओर ले जाता है। और अधिक सीधे संदेशों के पक्ष में संगीत को दिए जाने वाले समय के अनुपात में कटौती का कोई भी प्रयत्न माध्यम के स्वभाव की उपेक्षा ही है। दूसरी ओर व्यापक और विविध तथा पुनरावृत-श्रोतावर्ग और उनके संरक्षण के लिये संगीतज्ञ प्रसारण के माध्यम से जुड़े हुए हैं।

तो भी प्रसारण माध्यम और उसका उपयोग करने वाली एजेन्सी के बीच का अन्तर समझने की दिशा में हमें सावधान रहना चाहिए। और क्योंकि हमारे देश में केवल प्रसारण ही एकाधिकार की स्थिति का सुख भोगता है, इसलिए इस तरह का अन्तर और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

मेरे मतानुसार भारतीय प्रसारण को संगीत के जो लाभ मिले हैं वे स्वयं इस माध्यम के लिए भी लाभदायक सिद्ध हुए हैं। इसके लिये ये एजेन्सी, याने आकाशवाणी, जो इस प्रसारण के माध्यम को संचालित करती है, कम ही श्रेय ले सकती है। देश में वैकल्पिक अथवा प्रसारण सेवा की स्थिति में ये विषय और अधिक पेचीदा हो सकता था। इस सम्बन्ध में मैं जो संगीत सम्बन्धी विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहता हूं सम्भव है उससे स्थिति कुछ स्पष्ट हो सके।

सबसे पहले आकाशवाणी द्वारा अनुसरण किए जाने वाले संगीतात्मक विभाजन के विषय पर विचार करें। इस विषय का महत्त्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि आकाशवाणी की प्रचलित कार्यक्रम योजना से जिसे वस्तुतः स्तम्भ प्रसारण (चंक ब्राडकास्टिंग) की योजना का नाम दिया जा सकता है, इस विभाजन का सीधा सम्बन्ध है। संगीत सम्बन्धी विभाजन की वर्तमान शाखाएँ उदाहरणार्थ शास्त्रीय, अर्ध शास्त्रीय, सुगम शास्त्रीय, सुगम संगीत, फिल्म संगीत, भक्ति संगीत आदि प्रवृत्ति-मूलक विभाजन हैं जो सहज रूप में संगीत विद्या से ही प्रेरित हैं। यह स्थिती उस समय के लिए पर्याप्त रही होगी जब संगीत का स्वरूप सीमित रहा होगा, बहुत थोड़े रेडियो सेट होंगे या श्रोता वर्ग भी काफी कम होगा।

हम जानते हैं कि एक समय ऐसा भी था जब न तो कहीं कोई संगीत विद्यालय या कालेज थे, और न ही कोई सार्वजनिक समारोह या संगीत सम्मेलन। ऐसे समय में संगीत के इस तरह के विभाजन का उपयोग लाभप्रद था लेकिन प्रचार संस्थाओं के पूर्णतः गतिशील होने के बाद स्थितियां बदल गई हैं। संगीतात्मक घटनाओं से प्रगुणन (संवृद्धि) ने अनिवार्य रूप से स्तर के आधार पर निरपेक्ष संगीत की निष्पक्ष प्रस्तुति की स्थिति उत्पन्न कर दी। इस स्थिति में सुधार के लिये तात्कालिक और सशक्त प्रक्रिया की आवश्यकता थी जो आकाशवाणी जैसे जन सम्पर्क माध्यम द्वारा ही सम्भव है। सामान्य जन के विकास तत्त्व को स्तरीय संगीत विभाजन की आवश्यकता थी। उदाहरण के लिए मनोरंजन संगीत, शैक्षणिक संगीत, प्रायोगिक संगीत और सांस्कृतिक संगीत के रूप में इस संगीत का विभाजन हो सकता है। यह स्वाभाविक है कि इस तरह का विभाजन आज के रूढ़ संगीतशास्त्रीय विभाजन को अव्यवस्थित कर देता है क्योंकि गजलों के कार्यक्रम में खयाल की प्रस्तुति स्तरीय आधार पर घटिया प्रतीत हो सकती है।

इस विषय को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि फिल्म संगीत की अधिकांश स्थितियां और अस्थायी सौन्दर्यात्मक आवश्यकता की अन्य संगीतिक व्याख्याएं मनोरंजनात्मक संगीत की कोटि में ग्रहण की जाएंगी। शैक्षणिक संगीत से हमारा तात्पर्य उस संगीत से होता है जिसका भले ही कोई लोकप्रिय अथवा व्यावसायिक मूल्य न हो लेकिन जिसे हम प्रामाणिक मानते हैं। इस प्रकार का संगीत गम्भीर संगीतज्ञों और संगीत के छात्रों के लिए आदर्श सिद्ध होता है। मैं मानता हूँ कि प्रयोगात्मक संगीत ऐसे कोटि का है, जिसका प्रतिनिधित्व आजकल बहुत ही साधारण है। लेकिन यह एक ऐसी पद्धति है, जिसकी प्रगति की भविष्य में अच्छी सम्भावना है। इस कोटि के अन्तर्गत स्वर सामंजस्य तथा वाद्य वृन्दकरण के, समूह गायन के, विद्युत संगीत वाद्यों के उपयोग के, तथा ऐसे ही अन्य प्रयासों के प्रयत्न के प्रयोग सम्मिलित हैं। सांस्कृतिक संगीत की ओर संकेत करते समय मेरा तात्पर्य संगीत की उस व्यापक रूप-सृष्टि से होता है जिसके अन्तर्गत आदिम संगीत और लोक संगीत अपने अनियोजित तथा असैद्धांतिक रूप में समाविष्ट है। अपरिहार्य रूप से इस नई योजना में कुछ अतिव्याप्ति (अतिक्रमण) है लेकिन उस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता जो गुणवत्ता प्रसूत है।

प्रचलित विभाजन के विपरीत श्रेणीकरण की यह पद्धति योजनाकारों को अधिक सतर्क बनाएगी। वह अपने पूर्व निर्मित रजिस्टरों में लिखित कलाकार-श्रेणियों का आँख मूंदकर पिष्ट पेषण नहीं कर सकते। उन्हें प्रत्येक मुद्दे में अपनी निर्णय-शक्ति का उपयोग करना पड़ेगा और उसके पश्चात उपयुक्त श्रवण क्षणों में उन्हें अनुसूचित करना होगा। विशेष श्रवण काल में श्रेष्ठ कार्यक्रम निर्धारित किए जाएंगे। आजकल तो केवल निश्चित समय चिन्हों तथा श्रेणीबद्ध कलाकारों के सारिणी निर्माण द्वारा ही कार्यक्रम की अनुसूची तैयार की जा सकती है। परिणाम स्वरूप अनुसूची के अन्तर्गत कार्यक्रम की श्रेष्ठता कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। निस्संदेह इस स्थिति से अकाल्पनिक मशीनी-स्तम्भ प्रसारण को बल मिलता है। बिचारे असुरक्षित श्रोताओं को सामने उपस्थित संगीत का सामना करना पड़ता है। उनकी अपनी मान्यताएँ हैं। पर वे उन्हें बुलन्द नहीं कर सकते।

मेरे गुणवत्ता प्रेरित श्रेणीकरण का एक दूसरा पक्ष भी है। इसके अन्तर्गत कलाकारों के लिये भी एक अतिरिक्त मापदण्ड की व्यवस्था है। वे इस बात के लिए निश्चिंत नहीं बने रह सकते कि वे इसलिए श्रेष्ठ महत्त्वपूर्ण श्रवणकाल में स्वतः ही कार्यक्रम पा लेगें क्योंकि किसी समय शीर्ष में उनका निर्धारण हुआ था। प्रदर्शन कलाओं में न तो वार्षिक परीक्षाएँ होती हैं और न विशिष्ट उपलब्धियाँ ही दी जाती है। कलाकारों को प्रतिक्षण अपनी कला की अग्निपरीक्षा देनी होती है। मेरे श्रेणी विभाजन का अर्थ यह है कि कलाकार की कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति रही हो, यदि उसका कार्यक्रम स्तर शिथिल होता है तो चरम श्रवण काल की प्रसारण गरिमा से वह वंचित ही माना रहेगा। पूर्व अर्जित ख्याति के आधार पर कलाकारों को सदा-सदा के लिये महान नहीं माना जा सकता। हमारे अधिकांश कलाकार आज स्फुर्तिहीन, उथले और आत्मतुष्ट हैं।

हम क्यों संगीतात्मक विभाजन से बंधे हैं। प्रसारण जनसम्पर्क माध्यम है। अतः इसका सम्बन्ध संगीत की संचार क्षमता से होना चाहिए। आज जरुरत है स्तर और श्रेष्ठता की भावना प्रवाहित करने की न कि श्रेणी विभाजन की प्रवृत्ति की। वैसे काम के लिए कई उपयुक्त एजेंसियाँ उपलब्ध हैं। परिवर्तनशील समाज में कार्यशील सम्प्रेषण के लोकप्रिय माध्यम वाले दर्शन से आकाशवाणी अब तक भी पूर्णतः परिचित नहीं है। वह अब भी अपने संगीतमय विचारों को मध्ययुगीन संगीतशास्त्रीय विभाजन के हुक्के से गुड़कती है।

(मेरे विचारों में पिछड़ापन यही हैं कि सम्बद्ध कार्यकर्ताओं को उत्तरदायित्व की भावना के साथ अधिक काम करना होगा)?। उक्त स्थिति में दायित्व दूसरों पर छोड़ा नहीं जा सकेगा।

आकाशवाणी अब भी एक पुराने और घिसे पिटे ढांचे में घिसट रही है उसमें खर्चीलेपन का पूर्ण अभाव है जो कि आकाशवाणी की स्पष्टमयी संगीतमयी संस्कृति की नीति न होने का स्वाभाविक परिणाम है। आकाशवाणी द्वारा अपनाई जाने वाली

इस तरह की सही नीति उसे सांगीतिक रणनीति के सन्दर्भ में अवधि मूलक आचरणों के लिये आवश्यक आदर्शों से सम्पन्न कर देती। उदाहरण के लिये सांगीतिक संस्कृति में कुछ मौलिक नीतियां अपनाने की सम्भावना रहती है। जैसे प्रचार, शिक्षा, परिरक्षण, सर्जन, पसंदगी या अनुसंधान आदि।

इसके साथ साथ इन विभिन्न नीतियों के निर्वाह के लिये भी युक्तियां सम्भव हो सकती हैं। जैसे चुने हुए श्रोताओं की उपस्थिति में कार्यक्रम प्रस्तुत करना, यदाकदा बड़ी संख्या में श्रोता समुदाय तक पहुंचना अथवा प्रसारण को सूचना मंच के रूप में इस्तेमाल करना या उसे विचार विनिमय का आधार बनाना या उसे सांस्कृतिक प्रवर्तक समझना अथवा एक सुदृढ़ माध्यम मानना, विश्व को घर तक पहुंचाने के लिए उसे आवश्यक समझना अथवा व्यक्तिगत विरोधों को हल करने के लिये ठोस सहयोगी तथा एक पृथक सांस्कृतिक पहचान को आदर करने वाला मानना। ये सभी रणनीतियां हैं। नीतियों के कार्यान्वयन की दृष्टि से रणनीतियां प्रस्तुत परिवर्तित पुनर्निर्धारित की जाती हैं। नीतियां आधारभूत अस्पष्ट लेकिन दूरवर्ती होती हैं जबकि रणनीतियां मध्यवर्ती और ठोस यद्यपि तुलात्मक दृष्टि से अस्थायी होती हैं। रणनीतियां अविभक्त रूप से परिणामबद्ध होती हैं। उनका अन्त तभी किया जाता है जब फल प्राप्त होते हैं या जब से ये स्पष्ट हो जाता है कि उनकी प्राप्ति सम्भव नहीं। संगीत सम्बन्धी जिस श्रेणी विभाजन की हमने चर्चा की है वह कुछ निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर घोषित रणनीति थी। आकाशवाणी में भ्रमवश उसे नीति समझ लिया। केवल व्यापक लचीली दृष्टि ही आकाशवाणी को देखने समझने की क्षमता दे सकती है कि किस प्रकार गलत साबित हुई नीतियां ही उसके मार्ग में मुख्य बाधाएँ बनती गई हैं।

रणनीतियों और प्रणालियों की अटूट श्रृंखला निर्मित करने की दृष्टि से समुचित नीति के अभाव और परिणामतः प्राप्त विफलता के अन्य उदाहरण सरलता से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हो सकते हैं - नई प्रतिभाओं की खोज, कलाकारों का परीक्षण, सामान्य जन को शिक्षित करना, संग्रहालयों का निर्माण, उभरते हुए कलाकारों के लिये कुछ विशिष्ट कार्य। इनमें से प्रत्येक रणनीति से प्रभावशाली परिणाम प्राप्त नहीं हो पाए क्योंकि आकाशवाणी के प्रयास उसी नीति के स्पष्ट विचार द्वारा समर्थित नहीं होते जो वांछित पूर्णता सहित कार्यान्वित करने के लिए रणनीतियों और प्रणालियों के समान स्पष्ट निर्धारण से सम्बद्ध हों।

यह तर्क दिया जा सकता है कि वस्तुतः आकाशवाणी इन सभी सिद्धान्तों पर जोर देती रही हैं। इसे प्रमाणित करने के लिये पुराने रजिस्टरों से आंकड़े भी निश्चित रूप से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। लेकिन ये सब आत्म प्रवंचना ही है पहली बात तो ये है कि स्तम्भ - प्रसारण की प्रकृति को देखते हुए गुणवत्ता की दृष्टि से आंकड़े विश्वसनीय नहीं रह जाते। दूसरे, मुख्य बात यह नहीं है कि आकाशवाणी द्वारा क्या संकल्पित हुआ है। बल्कि यह कि क्या अर्जित हुआ हैं। संगीत प्रचार के अतिरिक्त आकाशवाणी की नीतियाँ व्यापक रूप से असफल होती रही हैं। क्योंकि अन्य माध्यमों के उद्भव के कारण परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार वह स्वयं को ढाल नहीं पाई। और बहुत अधिक मोर्चों पर व्यस्त रहने की स्थिति में जुटी रहीं। उसे अपनी पद्धति में द्रुत परिवर्तन लाना चाहिए था जबकि अन्य प्रचार-प्रणालियाँ तथा माध्यम परिपक्व और विकसित हो रहे थे।

माध्यम के कार्यान्वयन का एक आवश्यक सिद्धांत है माध्यम-परिवार के सदस्यों में तत्संबंधी प्रभावशीलता विषयक परिवर्तन के प्रति जागरूकता का भाव। माध्यम कार्यों में पुनरावृत्ति कुछ नहीं, मार्गों का अवरोध ही है। उदाहरण के लिए संग्रहालयों का निर्माण, जनरुचि प्रशिक्षण तथा नयी प्रतिभाओं की खोज आदि का कार्य विविध विश्वविद्यालयों और क्षेत्रीय अकादमियों को आकाशवाणी सौंप सकती है और इम्प्रेसेरिओ कार्य तथा प्रचार योजनाओं पर ध्यान केन्द्रित कर सकती है। स्वयं को शीर्ष-नियंत्रण की स्थिति से मुक्त करके आकाशवाणी द्वारा उक्त एजेंसियों को एक माध्यम के रूप में प्रसारण का कार्य सौंपा जा सकता है। दूसरे शब्दों में माध्यम को प्रयुक्त करने और रूप देने के उद्देश्य से सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। क्योंकि अधिकारों की माँग इतनी विविध है कि

विशेषता के अभाव में आकाशवाणी उनकी पूर्ति नहीं कर सकेगी । इतनी विविध मांगों की पूर्ति के लिए आवश्यक विशेषता की उपलब्धि किसी भी एक संस्था द्वारा सम्भव नहीं । अतः सत्ता के विकेन्द्रीकरण और विकेन्द्रित इकाइयों को सीमित स्वायत्तता ही एक मात्र मार्ग अभी तक मैंने जो कहा है उसका तात्पर्य यही है कि आकाशवाणी को प्रसारण के प्रति अपने मूल दृष्टिकोण में परिर्वतन करना चाहिये ।

प्रथम उसे यह अनुभव करना है कि वह एक लोकप्रिय-माध्यम-कोटि की विशिष्ट संस्था है । अतः किसी भी अन्य सरकारी परिवर्तनशील प्रबंध विभाग की तरह कार्य करना उसके लिए सम्भव नहीं है । नौकरशाही की मशीनी कर्मशालाओं के बजाय उसे एक सर्जनात्मक व्यवस्था स्थापित करनी चाहिये । लेकिन इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा विशेषता विरोधी अन्तर्धारा है ।

आकाशवाणी कार्यक्रमों से सम्बद्ध अधिकारियों के रवैये से यह स्थिति काफी कुछ स्पष्ट हो जाती है । ललित कलाओं अथवा ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी अन्य किसी भी विषय की साधारणतम जानकारी रखने वाले ये व्यक्ति कलाकारों अथवा विशेषज्ञों के बारे में अपनी तरह से काट छाँट करते रहते हैं या प्रसारण को आम आदमी से जोड़ने के बहाने ऐसे कलाकारों को आमंत्रित करते हैं जो उनके लिये अधिक सुविधाजनक हों । अपने कलाकारों से उनका श्रेष्ठ प्रदर्शन उपलब्ध कराना उनके वश की बात नहीं है क्योंकि एक तो वे स्तर से नीचे के प्रदर्शनों से संतुष्ट हो जाते हैं दूसरे संबंधित विषय की श्रेष्ठता आकर्षित करने के लिए आवश्यक व्यक्तित्व और ज्ञान, विचार उनके पास है भी नहीं । फिर यह भी कि संस्कृति और ज्ञान की किसी भी धारा में वह स्वयं गहरे गए नहीं अतः उसकी पराकाष्ठा के बारे में भी वे तभी जान पाते हैं जब पत्र - पत्रिकाओं या अन्य प्रचार माध्यमों में उसकी चर्चा होती है । विषयगत उपलब्धि और योगदान की विशेषता सूंघ लेने की क्षमता उनमें नहीं है । वैयक्तिक गतिरोध से उत्पन्न इस नैतिक असमानता से अधिक घातक बात प्रसारण कर्मचारियों के लिये और कुछ नहीं हो सकती ।

आखिर इस गूढ़ विशेषता-विरोध का आधार क्या है? मेरे विचार से इसका कारण 'सांस्कृतिक लोकतंत्र' या नई प्रतिभाओं की सम्भावना या आकांक्षा के प्रति सहज आस्था का अभाव ही है । वस्तुतः यह सब बकवास है । जीवन के व्यावहारिक तथ्यों के कारण उन्हे सत्य के प्रति आँख नहीं मूंद लेना चाहिये । सत्य यह है कि एक सांस्कृतिक आभिजात्य का अस्तित्व सदा ही बना रहता है और सांस्कृतिक मामलों से सम्बद्ध किसी भी माध्यम के अन्तर्गत उसका योगदान सुनिश्चित है ।

इस विशेषज्ञ-विरोध के रवैये का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है आकाशवाणी द्वारा एक ऐसे पक्ष की उपेक्षा जो उसके लिए विशेष महत्त्व की हो सकती है और वह है अनुसंधान (मीडिया रिसर्च) । आकाशवाणी की सर्वोच्च सत्ता समग्र संम्प्रेषण प्रयासों में स्वयं अपनी विशिष्ट स्थिति को भी देख पाने में असफल हो जाती है । साथ ही प्रदर्शनशील कलाओं में संप्रेषण के विशिष्ट चरित्र के प्रति भी वह असावधानी बनी रहती है । परिणामस्वरूप प्रसारण के जिस आदर्श के पीछे आकाशवाणी चलती है वह लकीर के फकीर वाली बात हो जाती हैं । उदाहरणार्थ वह अब भी पुनरावृत्ति संदेश की सरलता तथा चमत्कारपूर्ण कार्यक्रम के प्रभाव में विश्वास करती है ।

एक सहज समाज में जहाँ तुलनात्मक अलगाव की स्थिति में कार्यरत प्रसारण ही एक मुख्य माध्यम है, ये तत्त्व उपयोगी और पर्याप्त ही नहीं बल्कि आवश्यक है । (लेकिन तब वे उतने अपरिहार्य नहीं रह जाते जबकि मुक्त क्षेत्र में अवतीर्ण उनके प्रचार-माध्यमों के बीच प्रसारण भी एक माध्यम होता है)? । इन परिस्थितियों में यदि आकाशवाणी को सफल होना है, तो अपनी प्रसारण-छवि के निर्माण की दिशा में उसे अधिक सांकेतिक, अधिक नई और अधिक आत्मविश्वासी होना होगा और होना भी चाहिये ।

आइये, इस सच्चाई पर संगीत की दृष्टि से हम फिलर्स सिगनेचर ट्यून्स तथा अंतराल संगीत के तत्त्व पर विचार करें । जैसा कि नाम से स्पष्ट है फिलर का उद्देश्य हैं रिक्त स्थान की पूर्ति । लेकिन माध्यम की समय बद्धता को देखते हुए उसका उपयोग

सांकेतिक सम्पर्क के रूप में ही होना चाहिये। फिलर के टुकड़ों का संग्रह अधिक काल्पनिक ढंग से किया जा सकता है। और उन्हें कहीं भी ठूसने के बजाय अधिक उद्देश्यपूर्ण रूप में उनका उपयोग हो सकता है। लोगों पर किसी भी चेतना के प्रभाव के लिए आवश्यक समयावधि ५५ मिलि सेकेण्ड होती है। किसी भी फिलर या वैसी ही किसी चीज को जो एक मिनिट की हो, एक सर्वथा नई सार्थक अनुभूति के रूप में ग्रहण किया जाना चहिये और अधिक उद्देश्यपूर्ण रूप में फिलर के उपयोगार्थ प्रयास किये जाने चाहिये।

एक सिगनेचर ट्यून को, परिचयात्मक मुहावरा होना चाहिये विस्तीर्ण संगीत रचना नहीं। शीर्ष ध्वनि की तरह वह अधिक सम्भावना उत्पन्न करेगी। प्रसारण के प्रारम्भ में प्रयुक्त सिगनेचर ट्यून कुछ अधिक अवधि की हो सकती है। लेकिन विविध कार्यक्रमों की सिगनेचर ट्यून्स का निर्माण आशा और तनाव उत्पन्न करने के लिये होना चाहिये। दूसरी ओर एक विष्कम्भ (अंतराल) छोटी मात्राओं वाली स्वावलम्बी संगीत इकाई होती है। प्रसंगानुसार वह निम्नाँकित तीन में से एक या अधिक क्रिया सम्पन्न कर सकता है। - वह पूर्व प्रसारित कार्यक्रम का प्रभाव संतुलित कर सकता है, वह आने वाले कार्यक्रम के स्वरूप का संकेत कर सकता है, या वह विगत कार्यक्रम से प्रथक होने के लिए और नया कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिये स्पष्ट इंगित कर सकता है।

दूसरी तरफ आकाशवाणी के अन्तराल (इन्टरल्यूड्स) अस्थाई स्थितियाँ है वह सब जो संगीत है, उसी रूप में ग्रहण नहीं किया जाता। ध्वनि - प्रभावों के संसार में कोई लोकतंत्र नहीं है। प्रस्तुत मांगों में सूक्ष्म परिवर्तनों के बारे में चिन्तन के लिये एक विशेष प्रकार की संवेदनशीलता की आवश्यकता है जो कार्यक्रम की सूक्ष्म पकड़ या प्रोग्राम सेन्स के रूप में चिरपिरचित है।

कार्यक्रम की सूक्ष्म पकड़ या प्रोग्राम-सेन्स क्या है? कार्यक्रम के किसी भी पक्ष की अस्थिरता का विरोध ही प्रोग्राम सेन्स है। किसी कार्यक्रम निर्माता के लिए कोई भी विस्तार महत्त्वहीन नहीं होता। बैठने की व्यवस्था, वाद्यों की स्थिति, आवश्यकतानुसार सहयोगी - वादकों का संगीत संयोजन, सहायक वाद्यों की उपलब्धि और वांच्छित कलात्मक वातावरण का निर्माण। प्रोग्राम मेन का इन सबसे गहरा सम्बन्ध होता है। प्रोग्राम मेन कार्यक्रम सम्बन्धी सामग्री को प्राण हीन वस्तु नहीं, एक धड़कती हुई जीवंत - स्थिति समझता है। कार्यक्रम की समझ रखने वाला आकाशवाणी का कर्मचारी - समुदाय विघटन की ओर जा रहा है।

इस विकट स्थिति का मूल कारण नियुक्तियों के सम्बन्ध में बर्ती जा रही वह नीति है जिसका व्यवहार आकाशवाणी कर रही है। किसी भी सरकारी विभाग की तरह कागजी योग्यताओं पर वह बहुत अधिक भरोसा करती है। ऐसा नहीं होना चाहिये क्योंकि हमारी घिसी-पिटी शिक्षा पद्धति द्वारा कलागत क्षमता का सही मूल्यांकन सम्भव नहीं। साथ ही विभागीय नियुक्तियों के लिये आकाशवाणी को व्यक्तित्व सम्बन्धी विशिष्ट परीक्षण आयोजित करना चाहिये। उसे अपने आंतरिक सेवा - परीक्षण कार्य को गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करना होगा।

सम्भवतः कार्यकर्ता के मध्य प्रचलित उस वरिष्ठता प्रणाली से उसे स्वयं को मुक्त करना होगा जिसके अन्तर्गत सरलतापूर्वक प्रमोशन (उत्कर्ष) सम्भव हो जाता है। ऐसे प्रमोशन से सम्बद्ध वेतन और पद वृद्धि के इस व्यूह से मुक्त होना चाहिये।

सुविधाओं से वंचित वर्ग के सम्बन्ध में भी यही नीति अपनानी चाहिये। उन्हे सीखने के अवसर और काम करने की सुविधाएं तथा अन्य सभी सधन उपलब्ध कराये जायें लेकिन विचारों की मौलिक स्थापना करने उन्हें स्वरूप प्रदान करने और उन्हें व्यवहारोपयोगी बनाने की क्षमता की हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। सांस्कृतिक क्षेत्र के कार्यकर्ता बड़े बड़े लोगों के सम्पर्क में आते हैं और वे ये अनुभव करते हैं कि जहाँ तक भौतिक उपलब्धियों का प्रश्न है, पांसे उनके विरुद्ध कर दिये जाते हैं। जिन्हें काम से प्यार है, वे दांत पीसते रह जाएंगे और भुगतेंगे। प्रसारण माध्यम के लोग इसी श्रेणी के हैं।